सो साधू जनु जाणु, जो साधे मनु सुधि करे,
दुख सुख लाभ अलाभ में, रहे साबूती साणु,
सामी सभकंहीं जो, केवल घुरे कल्याणु,
कढी पांहिंजो पाणु, पिए पियारे राम - रसु.

साधु-संत के लक्षण बतलाते हुए कहते हैं कि साधु पुरुष वह है, जो अपने मन को शुद्ध करने के लिए अपनी इच्छाओं कामनाओं को वश में कर लेता है। ऐसा साधु पुरुष दु:ख-सुख और लाभ-हानि में स्थिर रहता है। वही सच्चा साधु है, जो संसार के सभी जीवों का कल्याण चाहता है। वह अपने भीतर से अहंकार/'अहं' का भाव निकाल कर स्वयं को परमेश्वर की भक्ति का अमृत-रस पीता ही है, साथ-साथ दूसरों को भी पिलाता है।

सच्चे साधु संत मानो चलते-फिरते देव होते हैं। साधु संत समाज के हित करने वाले होते हैं। समाज में भक्ति या नाम-स्मरण का प्रचार-प्रसार करने वाले संत जन परोपकारी होते हैं। सूर्य की भाँति स्वाभाविक रीति से मनुष्य मात्र पर उपकार करने वाले संत अपने स्वार्थ के लिए नहीं अपितु लोक-कल्याण के लिए कार्य करते रहते हैं। संतों के उपदेश अथवा उनके द्वारा रचित ग्रंथों से दु:खमय गृहस्थी के लिए उपचार/उपाय मिल जाता है। संत ही मनुष्य को इस बात की प्रतीति/एहसास कराते हैं कि 'तुम विषयों के नहीं अपितु भगवंत के हो।' संत विषयों की आसक्ति को कम करने वाले होते हैं। मनुष्य में ईश्वर-दर्शन की प्यास निर्माण करने वाले संत उसे अपने सत्य स्वरूप की पहचान कराने वाले होते हैं। स्वयं संतोष प्राप्त कर दूसरों को भी संतोष प्राप्त कराने का प्रयत्न करते हैं। यह उनका मानव-समाज पर किया हुआ बड़ा उपकार है। संतों ने स्वयं विषय-सुख न भोगकर दूसरों को तारने का प्रयास किया है। संत ज्ञानेश्वर ने अपनी 'ज्ञानेश्वरी' के 'पसायदान' में ईश्वरनिष्ठ संत-सज्जनों के स्वरूप एवं कार्य का वर्णन करते हुए कहा है कि जिन के मन में कुछ प्राप्त करने की कामना शेष नहीं है, ऐसे पूर्णकाम संत ही लोक-कल्याण स्वधर्म का आचरण करने में मग्न रहते हैं। ऐसे संतों की महिमा का वर्णन करते हुए उनकी तुलना कल्पतरु, चिंतामणि, सागर, चंद्र और सूर्य से की है-

चलां कल्पतरूंचे अरव। चेतनाचिंतामणींचे गांव।
बोलते जे अर्णव। पीयूषाचे।।
चंद्रमें जे अलांछन। मार्तंड जे तापहीन।
ते सर्वांही सज्जन। सोयरे हेतु।।

■